जैन धर्म के नैतिक अमोघ अस्त्र

डॉ० उमा शुक्ल

आज देश के सामने एक नहीं, अनेक चुनौतियां मौजूद हैं। सारा देश संक्रमण की स्थिति में है। वह आन्तरिक और बाहरी संकटों से घिरा है। कुछ भौतिक संकट हैं और कुछ आध्यात्मिक। देश की नैतिकता में भारी गिरावट आ रही है। जीवन-संघर्ष निरन्तर कठिन से कठिनतर बनता जा रहा है। शोषण, दमन और उत्पीड़न का चक्र भी अपने पूरे वेग से देश की मूक मानवता को निर्मम भाव से पीस रहा है। स्वार्थ और लोभ का मारा मनुष्य अपनी मानवता खोकर दानवता की दिशा में पांव बढ़ाये जा रहा है। सत्ता और सम्पत्ति की चकाचौंध के कारण मनुष्य अपने सत्त्व को खो रहा है।

आज का मानव निराधार एवं निःसहाय स्थिति में है। कोई न कोई आधार पाने के लिए वह व्याकुल है। इस छटपटाहट ने ही उसे नैतिक प्रश्नों के बारे में सोचने को विवश कर दिया है। जिस प्रकार स्वस्थ व्यक्ति की अपेक्षा बीमार को अपनी स्वास्थ्य की चिन्ता अधिक सताती है उसी प्रकार नैतिक संक्रमण काल में नैतिक प्रश्न जितना उभरकर सामने आता है उतना स्थिर अथवा शान्ति काल में नहीं। आजकल प्रतिहिंसा, आपसी भेदभाव और बैर की भावनाएं सर्वत्र सुरसा के मुख की भांति फैलती जा रही है। आज रक्षा केवल धर्म कर सकता है लेकिन धर्म इन दिनों उपेक्षित और ह्रास की अवस्था में है।

अध्यात्म से महावीर जिस निर्णय पर पहुंचे थे आज के प्रबुद्ध विचारकों को भी उसी पर पहुंचना है। महावीर का धर्म, कल्पना नहीं, जीवन-अनुभव पर आधारित है। उनका उपदेश सदा नवीन-सा है जिसकी प्रत्येक बूंद मृत जीवन में नया जीवन संचार करने की क्षमता रखती है।

सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति की उन्नति के लिए जैन धर्म में कुछ नैतिक मापदण्ड निर्धारित किये गये हैं। व्यक्ति जब तक अपने समाज का सदस्य है, अपने आत्मिक विकास के साथ-साथ समाज के प्रति भी उसका पूर्ण दायित्व है। यदि वह गृहस्थ जीवन का त्याग करके संन्यास धारण कर ले तो समाज के प्रति उसका दायित्व बहुत कुछ घट जाता है। जैन धर्म के अनुसार गृहस्थ जीवन साधु जीवन का लघु रूप ही है, क्योंकि कोई भी गृहस्थ अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुए अपने को मुनिपद के योग्य बना सकता है। महावीर की वाणी में "पुरुष दुर्जय संग्राम में दस लाख शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, उसकी अपेक्षा तो वह अपनी आत्मा पर ही विजय प्राप्त कर ले तो यही श्रेष्ठ है।" अपने को जीतना और आचरण शुद्ध करना ही जीवन का नैतिक मानदण्ड है। जैन धर्म है 'जिन' भगवान का धर्म। जैन कहते हैं उन्हें जो जिनके अनुयायी हों। 'जिन' शब्द बना है 'जि' धातु से। 'जि' माने 'जीतना' 'जिन' माने जीतने वाला। जिन्होंने अपने मन को जीत लिया; अपनी वाणी को जीत लिया और अपनी काया को जीत लिया वही जैन है। महावीर ने मनुष्य मात्र को सुख की कुंजी बताई थी। उनका मार्ग सामान्य से भिन्न है। वीर तो बाह्य शत्रुओं से झगड़कर विजय प्राप्त करता है पर महावीर तो अपने आन्तरिक शत्रुओं पर विजय पाने में सच्ची विजय मानते हैं। यही सुख-प्राप्ति का सच्चा मार्ग है।

प्राचीन काल से हमारे यहां प्रार्थना में यह कहने का रिवाज है—

'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्।'

यह शुभ कामना है और आकांक्षा है कि दुनिया का शुभ हो। लेकिन इसके साथ-साथ अगर शुभ करने का काम न हो तो ऐसी सदिच्छा का कोई खास मतलब नहीं। श्री अरविन्द ने कहा है—'सर्वोच्च ज्ञान तक बौद्धिक पहुंच और मन पर उस का आधिपत्य एक अनिवार्य और सहायक साधन है। दीर्घकालीन कठोर साधना करके जो तथ्य तथा सत्य महावीर ने प्राप्त किया वह केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखा। जो भी उनके सम्पर्क में आये उन्हें अनुभवों का भण्डार खुले हाथों लुटाया। सभी जैन तीर्थंकर ने स्वयं कृत-कृत्य हो जाने पर भी इन्होंने, एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही जगह बैठकर या मौन रखकर उस प्राप्त शान्ति को अपने तक ही सीमित नहीं रखा, पर गांव-गांव में घूमकर सद्धर्म के उपदेश दिये। इन के सार नैतिकतापूर्ण हैं।

१. जो मनुष्य धर्म करते हैं उनके रात और दिन सफल हो जाते हैं।

२. ज्ञानी होने का सार ही यह है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे।

३. धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उसका अन्तिम रस।

४. क्रोध नीति का नाश करता है; मान विनय का, माया मित्रता का और लोभ सभी सद्गुणों का। —महावीर वाणी

धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण भी नैतिक मानदण्ड है। धर्म जीवन जीने की कला है। धर्म एक आदर्श जीवन-शैली है। सुख से रहने की पावन-पद्धति है। शान्ति प्राप्त करने की विमल विद्या है। सर्वजन कल्याणी आचार संहिता है, जो सबके लिए है। नीति बीज है, धर्म फल है। नीति कारण है, धर्म कार्य है। अंतस को बदले बिना आचरण नही बदला जा सकता। केन्द्र के मूल को बदले बिना, परिधि को बदलने का प्रयास केवल एक निरर्थक स्वप्न है।

जैन धर्म का सबसे बड़ा नैतिक मानदण्ड अंहिसा है। डा० सालतोर ने कहा है—'हिन्दू संस्कृति में अहिंसा एवं सहिष्णुता के सिद्धान्त जैनों की महान देन है।" पार्श्वनाथ ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि सद्गुणों को सामाजिक जीवन में आचरणीय बनाया था। महावीर ने बारह साल की कठोर साधना के बाद सिद्धि प्राप्त होने पर जो उपदेश दिया, उसमें प्रथम स्थान अहिंसा को दिया। उन्होंने बताया कि हर व्यक्ति सुख से जीना चाहता है और दुःख भोगना या मरना नहीं चाहता। इसलिए किसी को दुःख मत दो। हिंसा, दुखों तथा बैर को बढ़ाने वाली है। महावीर ने आत्म-साधना द्वारा मनुष्य की प्रेरणा का स्रोत सुख से जीने की इच्छा माना। डा० अलवर्ट ने कहा है—"हर मनुष्य की सुख से जीने की इच्छा है। इसलिए जीवन को आदर दो और ऐसा जीवन जियो, जिसमें कम से कम दूसरों को न दुःखाया जाय।" अध्यात्म से महावीर जिस निर्णय पर पहुंचे वह व्यावहारिक जीवन का अति उत्तम मानदण्ड है।

महावीर कहते हैं कि हर कार्य सावधानी से कीजिए, यतन से कीजिए, बिना सावधानी के जो काम मूर्च्छा में होते हैं,वह हिंसा है। उन्होंने मूर्च्छा को हिंसा कहा है। वैर के निवारण का उपाय उन्होंने जो अहिंसा और अनेकान्त बताया वह आज भी उतना ही उपयोगी और कारगर है जितना कि उस समय था। निवृत्ति अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ प्राणों का विच्छेद न करना, इतना ही नहीं, उसका अर्थ है—मानसिक, वाचिक एवं कायिक प्रवृत्तियों को शुद्ध रखना। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि अहिंसा का संबंध जीवित रहने से नहीं, उसका दुष्प्रवृत्ति की निवृत्ति से है। राग, द्वेष, मोह, प्रमाद आदि दोषों से रहित प्रवृत्ति भी अहिंसात्मक है।

कितना उत्तम हो यदि हम इन दिव्य सूत्रों के अनुसार अपने जीवन को ढालें। प्रेम की दिव्य उत्पत्ति भी अहिंसात्मक वृत्ति से होती है। सभी धर्मों में इसे 'परमधर्म' माना गया है। 'अहिंसा परमोधर्मः'। वैज्ञानिक साधनों से आज विश्व छोटा-सा बन गया है अर्थात् सबका हिलना-मिलना सुगम हो गया है। अतः यदि हम सब को जीना है, सुखी रहना है तो सह-अस्तित्व यानी 'जीओ और जीने दो' का नारा बुलन्द करना होगा। आज रक्षा केवल धर्म कर सकता है लेकिन धर्म इन दिनों उपेक्षित और ह्रास की अवस्था में है। युक्तिवाद के श्रेष्ठ दावों के प्रति सन्देह उत्पन्न हो जाने के बावजूद स्वार्थ और गैरजिम्मेदारी कायम है। इस वर्तमान अवस्था में हमको आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा करनी चाहिए। आत्मनिर्भरता और उद्यम अनीश्वरवाद से नहीं पनपता। कवि पन्त के शब्दों में—

'सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन,
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग हो जावेगा जगजीवन,
आत्मा की महिमा से मंडित होगी नव मानवता।'

परन्तु इस नव मानवता की कल्पना साकार कैसी होगी ? इसका उत्तर शील-साधना है। महावीर की वाणी में—शील यानी आचार—शील मुक्ति का साधन है, शील ही विशुद्ध तप है। शील ही दर्शन विशुद्धि है, शील ही ज्ञान-बुद्धि है। शील ही विषयों का शत्रु है। शील ही मोक्ष की सीढ़ी है। जीवों पर दया करना, इन्द्रियों को वश में करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, सन्तोष धारण करना, सम्यक् दर्शन, ज्ञान और तप—ये सब शील के परिवार हैं। ईर्ष्या, द्वेष आदि से मुक्त होना चाहिए। यही 'शील' है।

महावीर ने दो मार्ग बताये हैं—निवर्तक मार्ग एवं प्रवर्तक मार्ग। निवर्तक मार्ग है—किसी का प्राण नाश न करना,किसी को कष्ट न पहुंचाना, किसी के साथ ईर्ष्या, द्वेष,क्रोध आदि न करना। प्रवर्तक मार्ग है—परिचर्या—सेवा करना, हित तथा प्रिय व्यवहार करना। अपने अन्दर दैवी गुणों का विकास करना। यही सद् आचरण है। शिर काटने वाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं कर सकता, जितना की दुराचरण में रत आत्मा करती है। सांसारिक दुखों से मुक्त होने का साधन बताया है—'जो मानव अपने आप पर नियन्त्रण पा लेता है यानी संयम को आत्मसात् कर लेता है, वह दुःखों से मुक्त हो जाता है। यही जीवन-दिशा है।

जैन आचार शास्त्र का एक दूसरा गुण है जो हमें एक आदर्श पड़ौसी बनने की प्रेरणा देता है। तदनुसार हर एक को सत्य बोलना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए और सम्पत्ति के अधिकार को मानना चाहिए। इन नैतिक गुणों के कारण हर व्यक्ति समाज का विश्वासभाजन बनता है और सबके लिए सुरक्षा का वातावरण प्रस्तुत करता है। मनुष्य के विचारों में कथनी और करनी का सामंजस्य होना आवश्यक है ताकि इसके द्वारा भी वैयक्तिक तथा सामाजिक सुरक्षा का वातावरण बने। इन गुणों से युक्त नागरिक शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं 'बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय' के सिद्धान्त का पालन करते हुए संगठित समाज और राष्ट्र की रचना कर सकता है। अहिंसा का सिद्धान्त विश्व नागरिक को इस मानवीय दृष्टिकोण की आवश्यक भूमिका प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति में एक दिव्य क्षमता होती है। उसका कार्य है कि वह धर्म-पथ का अनुसरण करता हुआ उस दिव्यता को जाने, पहचाने और अनुभव करे। हमें मानव मात्र का आदर करना चाहिए और सबका यही प्रयत्न हो कि मानव स्वस्थ तथा प्रगतिशील स्थितियों में रहकर विश्व-नागरिक बने। निस्सन्देह जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों—अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकान्त जैसे नैतिक मापदण्डों को ठीक से समझकर 'विश्व कुटुम्ब' की भावना पैदा की जा सकती है।

मनुष्य चारित्रिक उदात्तता से विश्व-कल्याण कर सकता है। जैसे बिन्दु का समुदाय समुद्र है, इसी तरह हम मैत्री करके मैत्री का सागर बन सकते हैं और जगत में मैत्री भाव से रहें तो जगत का रूप ही बदल जाये। सामयिक पाठ में यही सार दिया गया है :—

सत्त्वेसु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं
क्लिष्टेसु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव॥

लौकिक उन्नति का क्षेत्र हो या आध्यात्मिक साधना का, सर्वत्र उज्ज्वल सत्त्वशाली महानुभाव के सम्पर्क और निर्देश को पाकर ही आज उत्साह, साहस, कर्त्तव्यनिष्ठा, सत्यपरायणता, करुणाशीलता, आत्म-त्याग जैसे मानवीय गुणों का विकास सम्भव हो सकता है। इन नैतिक मानदण्डों को अपनाकर अपना जीवन-मार्ग हम चुन लें और बावजूद तमाम बाधाओं के उस पर चलते रहें—

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।'

मानवीय स्वतन्त्रता

आर्थिक समृद्धि, कामोपभोग, यश, सत्ता और अधिकार या अगाध पांडित्य सब अपने आपमें मनुष्य को शाश्वत सुख या मानसिक शान्ति देने के लिए अपर्याप्त हैं। मानवी असन्तोष फिर भी बना रहता है। मार्क्स, फ्रायड और एडलर यह नहीं बतला सकते कि मनुष्य का उद्वेग किस प्रकार पूर्णतया मिट सकता है। मनुष्य जब अपनी परिस्थितियों में अपनी सुप्त सम्भाव्य शक्तियों के पूर्ण विकास के लिए पर्याप्त क्षेत्र पाता है, और स्वयं अपने तथा विश्व के बारे में अपने ज्ञान के आधार पर अपने विश्व के और अन्य मानव प्राणियों के साथ एकलयता का अनुभव करता है, तब उसे अपनी कृति से आनन्द मिलता है। दूसरी ओर संगति में जरा भी गड़बड़ होने से, मनुष्य दुःखी चिन्ताकुल, असन्तुष्ट या उत्तेजित हो जाता है, या फिर उसमें वैराग्य के मनोभाव जागते हैं। दूसरे शब्दों में स्वातन्त्र्य के साम्राज्य में वह सुखी रहता है और बन्धनों में वह दुःखी हो जाता है। अतः मानवी-स्वतन्त्रता ही सर्वोच्च नैतिक मानदंड है।

—श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी के निबन्ध 'भारतीय समाज-व्यवस्था के नैतिक आधार',
नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० सं० ३१० से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org